

E-ISSN: 2709-9369  
P-ISSN: 2709-9350  
[www.multisubjectjournal.com](http://www.multisubjectjournal.com)  
IJMT 2023; 5(4): 21-27  
Received: 05-02-2023  
Accepted: 07-03-2023

**डॉ. अनिल कुमार**  
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत  
विभाग, कमला नेहरू  
महाविद्यालय, दिल्ली  
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,  
भारत

## योगदर्शन में मानसिक रोग एवं मनोचिकित्सा

**डॉ. अनिल कुमार**

### प्रस्तावना

पातञ्जलयोग स्वास्थ्य का चरम विज्ञान है, जिसका अभीष्ट आत्मसाक्षात्कार एवं समाधि की पूर्णवस्था की प्राप्ति है। अतः योगपद्धति चिकित्सात्मक होने की अपेक्षा साधनाप्रधान अधिक है। यहाँ आध्यात्मिक साधना में मानसिक आरोग्य एक आवश्यक शर्त रहा है। इसे प्राप्त किये बिना आध्यात्मिक साधना सम्भव नहीं है। जब मनुष्य का व्यवहार असामान्य होने लगे उसका मन रूग्ण व बीमार हो जाए, उसके मन में नकारात्मक चिन्तन, निराशा, अशान्ति, भय, घृणा, द्वेष, काम, क्रोध, ईर्ष्या, चिन्ता, वासना, कुढ़न, जलन, सनक, भ्रम व अविश्वास आने लगे तो सामान्यतः उसे मानसिक रोगी की संज्ञा दी जाती है। योग में मनोरोगों के स्वरूप एवं लक्षणों का विवेचन योग साधना में आने वाले विघ्न व्यवधानों के रूप में किया गया है और इन्हें चित्त विक्षेप की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः पातञ्जलयोगशास्त्र में उद्देश्य-वैभिन्न्य के कारण व्याधि अवस्था या मानसिक विकारों का वर्णन आयुर्वेद के अनुसार नहीं है। पातञ्जलयोग का मुख्य विवेच्य विषय मानसतन्त्र की चिकित्सा होने के कारण यहाँ मनोविकारों का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। पातञ्जलयोगसूत्र के अनुसार नव अन्तराय प्रमुख हैं जो इस तरह से हैं – व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थित्व।<sup>1</sup>

- 1. व्याधि (रोग)** - रस, धातु (शरीर) और करण (एकादश इन्द्रिय समुदाय) में किसी प्रकार की विषमता को व्याधि कहते हैं<sup>2</sup>। शरीर के पोषक वात-पित्त व कफ संज्ञक धातुओं, आहार के परिणामभूत रसों, एवं मन तथा चक्षुरादि करणों का 'विसदृशभाव' या असंतुलन ही व्याधि है।<sup>3</sup> इस दशा में चित्त स्थिर नहीं रहता है। सभी प्रकार की शारीरिक व मानसिक विकृतियों का 'व्याधि' में अन्तर्भाव हो जाता है।
- 2. स्त्यान** - उत्तम कर्तव्य ज्ञान रहने पर भी चित्त को ध्यान आदि साधन में प्रवृत्त न करने की इच्छा का होना 'स्त्यान'<sup>4</sup> है या चित्त की अकर्मण्यता अर्थात् साधना में

<sup>1</sup>व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि

चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः। यो.सू. 1.30

<sup>2</sup> व्याधिर्धातुरसकरणवैषम्यम् ॥ व्या.भा.1.30

<sup>3</sup> (1) शरीरधारकत्वाद् धातुनां वात-कफ-पित्तानां, रसानामाहारपरिणामानाम्, करणानां चक्षुरादीनां च वैषम्यं विसदृशभावो व्याधिः॥ यो. वा. 1.30

(2) व्याधिरिति। धातवो वातपित्तश्लेष्माणः, शरीरधारणात्। अशीतपिताहारपरिणामविशेषोरसः। करणानीन्द्रियाणि। तेषां वैषम्यं न्यूनाधिकभाव इति॥ त. वै. 1.30 पृ. 394

<sup>4</sup> अकर्मण्यता योगानुष्ठानामक्षमता, आमवातादिना देहस्यकर्मण्यत्वेऽपि चित्तस्ययोगविसेधाचित्तस्यैति उक्तम् ॥ यो.वा.1.30

Corresponding Author:

**डॉ. अनिल कुमार**  
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत  
विभाग, कमला नेहरू  
महाविद्यालय, दिल्ली  
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,  
भारत

- प्रवृत्ति न होने का स्वभाव स्त्यान है।<sup>5</sup> इसमें मन की सक्रियता का अभाव होता है। अप्रीतिकर होने पर भी वीर्यपूर्ण प्रयत्न करने पर स्त्यान हट जाता है।
3. **संशय** - अपनी शक्ति या योग के फल में संदेह हो जाने का नाम संशय है।<sup>6</sup> इसमें मन एकाग्र नहीं हो पाता है। संशय के रहते हुये अत्यन्त वीर्यपूर्ण प्रयत्न नहीं हो सकता। किन्तु श्रवण-मनन द्वारा तथा स्थिर व संशयहीन उपदेश के सहवास से संशय दूर होता है।
  4. **प्रमाद** - योगसाधना के अनुष्ठान की अवहेलना करते रहना प्रमाद है।<sup>7</sup> समाधि के साधनसमूह की भावना न करना तथा आत्मविस्मृत होकर विषय में लिप्त रहना ही प्रमाद है।<sup>8</sup> इसमें व्यक्ति अभीष्ट कर्तव्य कर्म को नहीं करता, जिससे चित्त विकृष्ट बना रहता है।
  5. **आलस्य** - तमोगुण की अधिकता के कारण शरीर में भारीपन आ जाना और उसके कारण साधना में प्रवृत्ति का न होना आलस्य है।<sup>9</sup> स्त्यान में चित्त अवश होकर इधर-उधर भटकता है जबकि आलस्य में चित्त तमोगुण के प्राबल्य से स्तब्धवत् रहता है। इस तरह मन के तमोगुण और शरीर में आलस्य से उत्पन्न निष्क्रियता चित्त विक्लेश का प्रमुख कारण है। मितहार, जागरण और उद्यमशीलता के द्वारा आलस्य पराभूत होता है।
  6. **अविरति** - विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग होने से उनमें आसक्ति हो जाने के कारण चित्त में वैराग्य का अभाव हो जाता है, उसे अविरति कहते हैं।<sup>10</sup> इस तरह इन्द्रियों का विषयभोगों से न हटा सकना विक्लेश का कारण है। विषयों से दूर रहकर वैषयिक संकल्प को त्यागने का अभ्यास करने से अविरति नष्ट होती है।
  7. **भ्रान्तिदर्शन** - योग की साधना को किसी कारण से विपरीत समझना अर्थात् साधन ठीक नहीं, ऐसा मिथ्या ज्ञान हो जाना 'भ्रान्तिदर्शन' है।<sup>11</sup> दूसरे शब्दों में, यथार्थ, हान और हानोपाय को न जानकर निम्न पद को उँचा मानना तथा श्रेष्ठतम को निम्न समझना ही भ्रान्तिदर्शन है। ईश्वर और गुरु के प्रति श्रद्धा के

साथ योगशास्त्र के अध्ययन से भ्रान्तिदर्शन दूर हो जाता है।

8. **अलब्धभूमिकत्व** - मधुमति आदि योगभूमि की अप्राप्ति अर्थात् साधना करने पर भी योग की भूमिकाओं या साधन की स्थिति का प्राप्त नहीं होना, अलब्धभूमिकत्व है।<sup>12</sup> इससे साधक का उत्साह कम हो जाता है, मन अस्थिर होने से विक्लेश उत्पन्न होता है और ध्यान नहीं लगता।
9. **अनवस्थित्व** - योगभूमि की प्राप्ति के बाद भी उसमें स्थित न होना अनवस्थितता है।<sup>13</sup> इससे मनःस्थिति डाँवाडोल रहती है व विक्लेश की स्थिति बनी रहती है। ईश्वर प्रणिधान व तत्त्वसाक्षात्कार रूप समाधि से सब अन्तराय दूर हो जाते हैं। ईश्वरप्रणिधान से बुद्धि निर्मल होती है।<sup>14</sup>

**पञ्च विक्लेशसहभुवः** इस प्रकार इन नौ प्रकार के चित्तविक्लेशों को ही अन्तराय, विघ्न और योग के प्रतिपक्षी आदि नामों से कहा जाता है।<sup>15</sup> इनके रहने पर पाँच विघ्न उपस्थित हो जाते हैं- दुःख, दौर्मनस्य, अगमंजयत्व, श्वास और प्रश्वास।<sup>16</sup> इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है -

1. **दुःख** - दुःख वह है जिनसे प्राणी पीड़ित होकर उसकी निवृत्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।<sup>17</sup> दुःख अर्थात् कष्ट भी तीन प्रकार के होते हैं- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। स्वशरीरसंघात से सम्बंधित दुःख आध्यात्मिक होता है। यह दो प्रकार का होता है शारीरिक और मानसिक।<sup>18</sup> राग, द्वेष, काम, क्रोध, भय, चिन्ता, आदि होने से मन, इन्द्रियों और शरीर में जो विफलता एवं वेदना होती है, उसी का नाम आध्यात्मिक दुःख है। इस प्रकार मनुष्य, पशु, सिंह, सर्प, मच्छर आदि द्वारा होने वाले कष्टों को आधिभौतिक दुःख कहते हैं।<sup>19</sup> गर्मी, सर्दी,

<sup>12</sup> अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमिरलाभः। व्या.भा.1.30

<sup>13</sup> अनवस्थितत्वं लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा। व्या.भा.1.30

<sup>14</sup> पातञ्जल योगदर्शन, पृ. 97

<sup>15</sup> हरिकृष्णदास गोयानका (व्या.) महर्षि पतञ्जलिकृत योगदर्शन. पृ.20

<sup>16</sup> दुःखदौर्मनस्याङ्गमंजयत्वप्रश्वासा विक्लेशसहभुवः। यो. सू.1.31

<sup>17</sup> (1) दुःखमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च। येनाभिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद्दुःखम्। व्या. भा. 1.31

(2) प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्। त. वै. 1.31

<sup>18</sup> आत्मानं स्वसंघातमधिकृत्य वर्तते इति आध्यात्मिकम्। तच्च द्विधं शारीरं मानसं च। शारीरं व्याध्यादिजनितं मानसं कामादिजम्। यो. वा. 1.31 पृ. 399

<sup>19</sup> व्याघ्रादिजनितं आधिभौतिकम्। त. वै. 1.31

<sup>5</sup> स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य। व्या.भा.1.30

<sup>6</sup> संशय उभयकोटिस्पृग्विज्ञानं स्यादिदमेवं नैवं स्यादिति। व्या.भा.1.30

<sup>7</sup> प्रमादः समाधिसाधनानामभावनम्। व्या.भा.1.30

<sup>8</sup> पातञ्जल योगदर्शन, पृ. 94

<sup>9</sup> आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः। व्या.भा.1.30

<sup>10</sup> अविरतिश्चित्तस्य विषयसंप्रयोगात्मा गर्धः। व्या.भा.1.30

<sup>11</sup> भ्रान्तिदर्शनं विपर्ययज्ञानम्। व्या.भा.1.30

- आंधी, तूफान, भूकम्प आदि दैवी कारणों से होने वाली पीड़ा आधिदैविक दुःख हैं।<sup>20</sup>
2. **दौर्मनस्य** – मन की कोई इच्छा पूरी न होने पर मन में जो क्षोभ उतपन्न होता है उसे दौर्मनस्य कहते हैं।<sup>21</sup>
  3. **अगंमैजयत्व**- शरीर के अवयवों का कम्पित होना अगंमैजयत्व है।<sup>22</sup>
  4. **श्वास** - श्वास प्रक्रिया पर नियन्त्रण न हो पाने के कारण बाहर की वायु का भीतर प्रवेश कर जाना अर्थात् भीतरी कुम्भक में विघ्न हो जाना श्वास है।<sup>23</sup>
  5. **प्रश्वास** - न चाहते हुए भी भीतर की वायु का बाहर निकल जाना अर्थात् भीतरी कुम्भक में विघ्न हो जाना प्रश्वास है।<sup>24</sup>

**मानसरोगों का कारण :-** योगदर्शन के अनुसार मनोरोगों का केन्द्रबिंदु प्रकृतिजनित अन्तःकरण है जिसमें प्रथमतः मन है। यौगिक दृष्टि मनोरोगों के कारणों पर विशद विवेचन करते हुए यह प्रतिपादित करती है कि मन (चित्त) के द्वारा ज्ञानस्वरूप मार्ग का अनुसरण न करके निम्न व अधोगामी मार्ग का अनुसरण करना मनोरोगों की पृष्ठभूमि निर्मित करता है। क्योंकि चित्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति जनित होने के कारण जड़ात्मक है, अतः उसका स्वभाव अधोगामी, बहिर्गामी व चंचल होना है। ज्ञानस्वरूप चैतन्य पुरुष की ओर उर्ध्वगामी स्वभावतः प्रकृति व तज्जनित विकारों की प्रवृत्ति नहीं है। अतः योगदर्शन के अनुसार अविद्या आदि पञ्च क्लेश समस्त बन्धनों, दुखों मनोरोगों आदि के कारण हैं। अविद्या प्रकृति का स्वरूप है जो तज्जन्य सभी विकारों में रहता है। प्रकृतिजन्य प्रथम विकार चित्त में रजोगुण व तमोगुण का उद्रेक होने से पञ्चक्लेश अधिक प्रभावी बन जाते हैं जो समस्त दुःखों को निष्पादित करते हैं। अतः योगदर्शन के अनुसार पञ्च क्लेश ही मनोरोगों के वास्तविक कारण हैं।

**पञ्चक्लेश :-** योगदर्शन में पञ्चक्लेश या पाँच प्रकार के मिथ्या ज्ञान हैं, जो वृत्तिलाभ करते हुये अभिव्यक्त होकर त्रिगुणों या त्रिगुणात्मिका (अन्तःकरण) बुद्धि के कार्यों को दृढ़ करते हैं तथा कारण-कार्य श्रृंखला अर्थात् महत्-अहंकारादि की उत्पत्ति विषयक परम्परा को बढ़ाते हुए उसमें निरंतरता रखते हैं। त्रिगुणों की

परिणामधारा को निरंतर चलायमान रखते हैं। आपस में एक-दूसरे का कामसाधने वाला बनते हुए प्राणियों के जन्म, आयु और भोग रूप कर्मफल को निष्पादित करते हैं।<sup>25</sup> ये पञ्चक्लेश अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश हैं।<sup>26</sup>

**अविद्या :-** अविद्या अनित्य, अपवित्र, दुःखात्मक और अनात्मक पदार्थ को क्रमशः नित्य, पवित्र, सुखात्मक और आत्मास्वरूप समझना है।<sup>27</sup> यह अविद्या क्लेश प्रवाह तथा (जन्म, आयु-भोगरूप) विपाकों सहित कर्मसंस्कारसमूह की जड़ है।<sup>28</sup> यह अविद्या न तो प्रमाण है, न प्रमाण का अभाव है, अपितु विद्या का विरोधी एक अन्य ज्ञान है, जिसकी सत्ता है। जो अपने परवर्ती क्लेशों की क्षेत्रभूमि है। अविद्या से ही वस्तु विषयरूप से उपस्थित होती है तथा अन्य क्लेश उसी का अनुसरण करते हैं। अतः समस्त समस्याओं का मूल कारण अविद्या है।

**अस्मिता :-** पुरुष व चित्त (बुद्धि) की एकात्मकता ही अस्मिता है। अविद्या के कारण चित्त जड़ात्मक होते हुए भी पुरुष के सानिध्य से स्वयं को चेतनवत् भोक्ता, ज्ञाता समझने का अभिमान करना ही अस्मिता है।<sup>29</sup> चित्त और पुरुष दोनों के अलग-अलग होते हुए भी चित्त द्वारा पुरुष के ज्ञातृत्वादि गुणों को अपने ऊपर आरोपित करना अर्थात् दोनों की एकात्मकता ही अस्मिता है।

**राग :-** सुखानुभव के बाद अनुभूत होने वाला क्लेश राग है।<sup>30</sup>

**द्वेष :-** दुःखानुभव के उपरान्त दुःख और उसके साधनों के प्रति अनुभूयमान क्लेश द्वेष कहा जाता है।<sup>31</sup>

<sup>25</sup> क्लेशा इति पञ्च विपर्यया इत्यर्थः। तेस्यन्दमानागुणाधिकारदृढयन्ति, परिणाममवस्थापयन्ति, कार्यकारणस्रोत उन्नमयन्ति, परस्परानुग्रहतन्त्री भूत्वा कर्मविपाकं चाभिनिर्हरन्तीति ॥ व्या. भा. 2.3

<sup>26</sup> अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ यो. सू. 2.3

<sup>27</sup> अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ यो. सू. 2.5

<sup>28</sup> एषा चतुष्पदा भवत्यविद्यामूलमस्य क्लेशसन्तानस्य कर्माशयस्य च विपाकस्येति ॥ व्या. भा. 2.5

<sup>29</sup> दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ यो. सू. 2.6

<sup>30</sup> सुखानुशयी रागः ॥ यो. सू. 2.7

<sup>31</sup> दुःखानुशयी द्वेषः ॥ यो. सू. 2.8

<sup>20</sup> आधिदैविकं ग्रहपिडादिजनितम् ॥ त. वै. 1.31

<sup>21</sup> दौर्मनस्यमिच्छाविघाताच्चेतसः क्षोभः ॥ व्या. भा. 1.31

<sup>22</sup> यदङ्गान्येजयति कम्पयति तदङ्गमैजयत्वम् ॥ व्या. भा. 1.31

<sup>23</sup> प्राणो यद्वाह्यं वायुमाचामति स श्वासः ॥ व्या. भा. 1.31

<sup>24</sup> यत्कौष्ठ्यं वायु निःसारयति स प्रश्वासः ॥ व्या. भा. 1.31

**अभिनिवेश :-** विद्वानों और सामान्यजनों सभी प्राणियों को संस्कार रूप में सदैव रहने वाला मृत्यु से भय अभिनिवेश है।<sup>32</sup>

इन पञ्च क्लेशों के रहने पर ही कर्म करने से संस्कार बनते हैं तथा यही कर्मसंस्कार (कर्माशय) फल देने वाले होते हैं। अतः क्लेशों के बने रहने पर कर्मजन्य फलों (जन्म, आयु, भोग) की प्राप्ति होती है। कर्माशय जन्मफल सभी के लिए सब दुःख रूप है, किन्तु अविद्या के कारण सामान्यजन उसे अनुभव करता हुआ भी सम्यक् ढंग से नहीं समझ पाता है तथा विवेकीजन त्रिगुणात्मक प्रवृत्तिस्वरूप कर्माशयजन्य फलों को सम्यक्तया जान पाते हैं, किन्तु वह उनके लिए भी दुःखमय है। प्रकृति और पुरुष का संयोग सृष्टि के लिए आवश्यक है जो सृष्टि के विकास व बंधन के लिए उत्तरदायी है। अतः बन्धन कारण प्रकृतिजन्य बुद्धि (दृश्य) तथा पुरुष (दृष्टुशक्ति) का संयोग ही व्यक्तिगत संयोग होता है।<sup>33</sup> जो अविद्या के कारण होता है। जो सभी प्रकार से दुःखों, रोगों व बंधन का कारण है।<sup>34</sup> अज्ञान ही संयोग का कारण है तथा ज्ञान से उत्पन्न होने वाला अज्ञानाभाव ही मोक्ष या अपवर्ग है। पुरुष + चित्त = दुःख, बन्धन, रोग आदि।

उस अविद्या के नाश से बुद्धि व पुरुष के संयोग का नाश हो जाता है। यही पुरुष का कैवल्य है।<sup>35</sup> जिससे गुणों (चित्त) से पुरुष का पुनः संयोग नहीं होता है। इस प्रकार दुःख के कारण की ही निवृत्ति हो जाने पर दुःख की निवृत्ति हो जाना ही मोक्ष है। उस समय पुरुष स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।<sup>36</sup>

**मानसरोगोत्पत्ति सिद्धान्त :-** योगदर्शन एक दार्शनिक तंत्र होने के साथ अभ्यासात्मक व व्यावहारिक जीवन जीने की विद्या भी है दार्शनिक प्रष्टभूमि के सैद्धान्तिक पक्ष के आधार पूर्णतया सांख्य पर अवलम्बित हैं। योगदर्शन केवल 26वें तत्त्व के रूप में ईश्वर को योग साधना में सहायक के रूप में पृथक् स्वीकार करता है। अतः सांख्य और योग को एक युग्म के रूप में सांख्ययोग भी कहा जाता है। मानसरोगोत्पत्ति सिद्धान्त को समझने के लिए सांख्यदर्शन की सृष्टिप्रक्रिया व प्रमेयों से सम्बंधित अवधारणा को आत्मसात करना आवश्यक हो जाता है।

<sup>32</sup> (1)स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढो भिनिवेशः॥ यो. सू. 2.9

(2) मरणभयम् । त. वै. 2.9

<sup>33</sup> स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः॥ यो. सू. 2.23

<sup>34</sup> तस्य हेतुरविद्या॥ यो. सू. 2.24

<sup>35</sup> तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम्॥ यो. सू. 2.25

<sup>36</sup> तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥ यो. सू. 1.3

सांख्य-योग में प्रकृति त्रिगुणात्मक, अज्ञानस्वरूपा व प्रसवधर्मिणी है। प्रकृति के प्रथम विकार चित्त में भी ये सभी गुण त्रिगुणात्मकता, प्रसवधर्मिता, अज्ञानात्मकता, संक्रमित हो जाते हैं। चित्त त्रिगुणात्मक होने के उपरान्त भी उसमें सत्त्व की प्रधानता होती है। अतः उसे सत्त्व भी कहा गया है। किन्तु अज्ञान स्वरूप वृत्ति के कारण उसमें सत्त्व गुण को रजस् व तमस् द्वारा अभिभूत कर दिया जाता है तब अविद्या, अस्मिता आदि क्लेश अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं तथा तमस् व रजस् प्रधान चित्तवृत्तियों का व्यापार निरंतर चलता रहता है। ये चित्त की वृत्तियाँ कर्मसंस्कारसमूह अर्थात् कर्माशयों को उत्पन्न करती हैं तथा ये कर्माशय भी अधिक पतित अन्य चित्तवृत्तियों को प्रेरित करते हैं। इन्हीं चित्तवृत्तियों के व्यापार से समस्त दुःख, अन्तराय, विघ्न, योगमल, मानस रोग, व्याधि आदि का प्रादुर्भाव होता है।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह समुपस्थित होता है कि मनोरोगों के पातञ्जलयोगदर्शन के अनुसार मूलकारण अविद्या आदि पञ्चक्लेश हैं तथा अविद्या की स्थिति प्रकृति का अविद्यारूपा होने से चित्त में सदैव विद्यमान रहती है। जब साधक योगसाधना द्वारा अविद्या सम्बंधित अज्ञान की निवृत्ति कर लेता है तब उसके समस्त मनोरोग, दुःख व बंधन समाप्त हो जाते हैं। अतः इस अज्ञान की निवृत्ति ही कैवल्य प्राप्ति व स्थायी सुख की प्राप्ति है तथा बन्धन, दुःख आदि की निवृत्ति है। कैवल्य प्राप्ति ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य है जिसकी प्राप्ति के पश्चात् पुनः कभी भी अस्वस्थता, रोग, दुःख आदि प्रभावित नहीं करते हैं।

**पातञ्जलयोग में मानसरोगोंपचार :-** पातञ्जलयोगदर्शन मानसरोगों के उपचार के संदर्भ में औषधि सम्बंधित पद्धतियों का उल्लेख न करके केवल साधना पद्धति को अनिवार्य मानता है। यह यौगिक साधना पद्धति रोगोपचार के विषय पर आत्यन्तिक दृष्टि से विचार करती है क्योंकि पातञ्जलयोगदर्शन के अनुसार मानसिक रोगों का मूल कारण अज्ञानस्वरूप चित्त वृत्तियों का बाह्य विषयों में आसक्त होना व द्वेष हैं। अतः इन चित्तवृत्तियों को बहिर्मुखी करने की अपेक्षा अन्तःमुखी आत्मचेतना (पुरुष) में प्रतिष्ठित करने से चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है तथा सम्पूर्ण स्वास्थ्य की अवस्था की प्राप्ति हो जाती है। यही पातञ्जलयोग में योग या कैवल्य की स्थिति है जिसकी प्राप्ति हेतु अष्टांगयोग की वैज्ञानिक व सुव्यवस्थित प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। पातञ्जलयोगदर्शन भारतीय मानस से उपजा सुव्यवस्थित एवं पूर्णतः मनोवैज्ञानिक

चिंतन है। यहाँ मनःउपचार भी मनुष्य के मानसिक स्तर के आधार पर तीन प्रकार से निर्धारित किया गया है।

प्रथम समाहित चित्त वाले साधक जिन्होंने पूर्वजन्म में पुण्यकर्म किये थे। ऐसे एकाग्रचित्त वाले मनुष्य जिनको सम्पूर्ण स्वास्थ्य या कैवल्य प्राप्ति के किये इस जन्म में एकतत्त्वाभ्यास व वैराग्य या सप्त चित्तपरिकर्मों में से किसी एक के पालन करना ही पर्याप्त है। क्योंकि इस प्रकार के साधक का चित्त पूर्वजन्म के पुण्यों या साधना से जन्मतः शुद्ध सात्त्विकवृत्ति वाला होता है। अतः समाहित चित्त मनुष्य जन्मतः ही मानसिक रूप से स्वस्थ पैदा होता है।

द्वितीय चंचलचित्त मनुष्य के लिए क्रियायोग के मार्ग का उल्लेख किया गया है।

तृतीय प्रकार के मन्द या अधम मनुष्यों के लिये योग में दुःखनिवृत्ति व पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु अष्टांग योग का उपदेश किया गया है। तथा विधा के अन्तर्गत पापी व अधमी मनुष्यों का मनोपचार व स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु अष्टांग योग के मार्ग का विवेचन किया गया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मानसिक रोगियों की श्रेणी के मनुष्यों को ही सम्मिलित किया जा सकता है। प्रथम व द्वितीय श्रेणी के मनुष्य मानसिक रूप से स्वस्थ है किन्तु योग परम्परा में स्वास्थ्य केवल मानसिक रूप से स्वस्थ होना नहीं है अपितु इस जन्म व पुनर्जन्म के समस्त बन्धनों, दुःखों व रोगों से मुक्त होना है।

इस प्रकार समाहित चित्त साधक, चंचल मनुष्य व अधम मनुष्य तीनों के लिए योग में पृथक्-पृथक् मार्ग का उल्लेख किया गया है। किन्तु अष्टांगयोग के अंतिम अन्तरंग साधन धारणा, ध्यान व समाधि तीनों प्रकार के साधकों के लिए अनिवार्य हैं क्योंकि समाहित चित्त वाले साधक जिनको पुनर्जन्म के पुण्यों के फलस्वरूप 'परवैराग्य' (त्रिगुणों के प्रति उपेक्षा) तो उदित हो जाता है। किन्तु वे उस 'अपरवैराग्य' को ध्यान, धारणा, समाधि का अभ्यास करते करते योग को सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं तथा चंचल चित्त वाले मनुष्य क्रियायोग से अपने चित्त की शुद्धि करके तत्पश्चात् ध्यान, धारणा व समाधि को अपनाते हैं।

इस प्रकार समाहित चित्त वाले जन्मतः वैराग्य प्राप्त करने में सक्षम होते हैं चंचल चित्त वाले क्रियायोग के तीन नियमों के पालन से तथा मन्द या अधम मनुष्य यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार इन बहिरंग साधनों द्वारा वैराग्य की प्राप्ति करते हैं। इसलिए योग के अंतिम तीन सोपान धारणा, ध्यान व समाधि प्रत्येक साधक के लिए आवश्यक होती है।

**एकतत्त्वाभ्यास और वैराग्य :** आधुनिक चिकित्साविज्ञान द्वारा स्वीकृत मानसरोगों, योगमलों तथा समस्त चित्तविक्षेप व सहभुव सभी की निवृत्ति अभ्यास व वैराग्य द्वारा होती है किन्तु यह अभ्यास व वैराग्य की विधि उन्हीं मनुष्यों के लिए लाभदायक हो सकती है जिनका चित्त पूर्वजन्म के पुण्यकर्मों से समाहित या सत्त्व को प्राप्त हो चुका है इस प्रकार के चित्त वाले मनुष्य के चित्त की समस्त वृत्तियों के निरोध के लिए अभ्यास व वैराग्य ही पर्याप्त हैं।

अभ्यास उस परम स्थिति को पाने हेतु साधनों का अनुष्ठान करना अभ्यास कहलाता है। यह मानसिक प्रयत्न (अभ्यास) दीर्घकालपर्यंत लगातार किसी विषय से दृढ़ होता है। वैराग्य इहलौकिक, स्त्री, धन, प्रभुता आदि तथा पारलौकिक स्वर्ग आदि विषयों के प्रति उदासीनता ही वैराग्य है। इस प्रकार अभ्यास व वैराग्य द्वारा समस्त तामस व राजसिक वृत्तियों के अभिभूत होने से सात्त्विक वृत्ति प्रकाशित होती है तथा सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। तीव्र स्फूर्तिवाले मनुष्यों या योगियों को इस स्थिति की प्राप्ति बहुत शीघ्र होती है।

**चित्तपरिकर्म :** चित्तपरिकर्म का अर्थ है - चित्त को शुद्ध बनाने की प्रक्रिया अर्थात् चित्त का शोधन करने की प्रारंभिक प्रक्रिया जिसके द्वारा चित्त को समाधि योग्य बनाने की पूर्व तैयारी होती है। चित्तपरिकर्मों का उल्लेख पतञ्जलि ने समाधिपाद में उत्तम अधिकारी अर्थात् शुद्ध मन व एकाग्र चित्त वाले मनुष्य के सन्दर्भ में किया है। ये परिकर्म समाहित चित्त व्यक्ति के लिए एक तत्त्वाभ्यास व वैराग्य द्वारा कैवल्य प्राप्त करने में अन्तरंग साधनों की भूमिका का निर्वहन करते हैं। योग शास्त्र में सात चित्तकर्मों का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक चित्तकर्म चित्त की प्रसन्नता व शुद्धता के साथ-साथ चित्त की एकाग्रता को भी प्राप्त कराता है।

**1. चित्तप्रसाधन :-** यह प्रथम प्रकार का चित्त परिकर्म है जिसके अनुसार चार प्रकार की भावनाओं को करने से चित्त प्रसाधित होता है। सुखी रहने वाले व सभी प्राणियों के प्रति मैत्री, दुखी प्राणियों के विषय में करुणा या दयाभाव, पुण्य करने वालों के प्रति मुदिता या हर्ष तथा पाप करने वालों के प्रति उपेक्षा या उदासीनता का भाव रखना चाहिये।<sup>37</sup> ऐसा करने से मनुष्य के चित्त में सात्त्विकवृत्ति के संस्कार उत्पन्न होते हैं तथा राजस व तामस धर्म क्षीण होते हैं जिससे चित्त प्रसन्न होकर एकाग्रता को प्राप्त करता है।

<sup>37</sup> मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥ यो.सू. 1.33

2. **प्राणायाम :-** सभी चित्त परिकर्म वैकल्पिक है अतः चित्तप्रसाधन में यदि चित्त (मन) नहीं लगता है तो प्राणायाम से चित्त की एकाग्रता हो सकती है। यह चित्त का दूसरा परिकर्म है जिसके अनुसार श्वसनक्रिया में प्राणवायु का रेचक, पूरक व कुम्भक तीनों प्राणायामों के द्वारा चित्त प्रसन्नता व एकाग्रता को प्राप्त करता है।<sup>38</sup>
3. **विषयाकाराकारित प्रवृत्ति विषयवती प्रवृत्ति :** सप्तगंधादि विषयों साक्षात्कार करने वाली प्रवृत्ति से चित्त एकाग्र होता है। यह विषयाकाराकारित वृत्ति अन्तरंग साधन धारणा के समान है।<sup>39</sup> जो समाधि या प्रज्ञा प्राप्ति में द्वार बनती है किन्तु इन विषयवती प्रवृत्तियों की भी स्थायी सत्ता नहीं होती है। ये ज्ञान की शुरुआती फुलझड़ी के समान होती है किन्तु इनके उत्पन्न होने से चित्त को एकाग्र होने की प्रेरणा मिलती है। इनकी अनियमितता व चंचलता का ज्ञान होने पर इन प्रवृत्तियों से 'वशीकारसंज्ञा' नामक वैराग्य की सिद्धि होती है। इस वैराग्य के कारण क्रमशः सम्प्रज्ञातयोग का अभ्यास होता है फलस्वरूप विवेकख्याति की सिद्धि होती है जो समस्त व्याधि स्त्यान आदि विघ्नों की नाशक है। इस प्रकार विषयवती प्रवृत्तियाँ कैवल्य प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती हैं।
4. **ज्योतिष्मती विशोका वृत्ति :-** चित्त के चौथे परिकर्म के रूप में विशोका व ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का विवेचन किया गया है। विशोकाप्रवृत्ति चित्त साक्षात्काररूपिणी प्रवृत्ति है, जबकि ज्योतिष्मती अस्मिता साक्षात्काररूपिणी।<sup>40</sup> अष्टदलकमलबन्ध हृदय में स्थित चित्त का ध्यान करने से विशोका प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। जिससे चित्त एकाग्रता को प्राप्त करता है, उसी प्रकार अस्मिता या अहंकार तत्त्व में स्थित चित्त के साक्षात्कार से उत्पत्ति प्रवृत्ति भी चित्त की एकाग्रता प्राप्ति में सहायक होती है।
5. **वीतरागचित्तप्रवृत्ति :-** इस परिकर्म में ध्येय विषय रागहीन चित्त को बनाने वाला योगी स्थितिपद रूपी एकाग्रता को प्राप्त करता है।<sup>41</sup>
6. **स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बन प्रवृत्ति :-** चित्त के छठे परिकर्म में निद्रा व स्वप्नप्रवृत्ति के अनुभवों को ध्येय विषय बनाने वाला तदाकाराकारित होने वाला योगी का चित्त एकाग्रता को प्राप्त करता है।<sup>42</sup>

7. **अभीष्टवस्तु ध्यान :-** चित्त के अंतिम परिकर्म में परिकर्म के रूप में समाहित चित्त वाले व्यक्ति के लिए अभीष्ट वस्तु के ध्यान का उल्लेख किया गया है।<sup>43</sup> जिसके अनुसार जिस किसी भी स्थूल से लेकर सूक्ष्मतम विषय पर साधक का मन स्थित हो जाये उसी पर ध्यान केन्द्रित करने से व्यक्ति को एकाग्रता की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् व्यक्ति को जो भी इष्ट या अभीष्ट हो उसी का ध्यान करने से भी उसी स्थिति की प्राप्ति होगी जो अन्य पूर्वोक्त प्रवृत्तियों से होती है।

इस प्रकार परिकर्मों द्वारा स्थिरता को प्राप्त हुआ चित्त राजस व तामस वृत्तियों से रहित पूर्ण सात्त्विक रूप से ध्येयविषयाकाराकारित हो जाता है। जिससे सबीज समाधियों या सम्प्रज्ञात समाधि का निरोध करता हुआ योगी ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं तज्जन्यसंस्कार के निरोध यानि निर्बीज समाधि या सम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त करता है।

**क्रियायोग :** मध्यम श्रेणी या चंचलचित्त वाले मनुष्य के लिए पातञ्जलयोगदर्शन में क्रियायोग का विधान किया गया है। क्रियायोग में तीन क्रियाओं को सम्मिलित रूप में योग इसलिए कहा गया है कि इनके करने से सांसारिक दुःखों व रोगों से मुक्ति मिलती है तथा स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। क्रिया योग में सम्मिलित तीन क्रियाएं हैं – तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान।

**तपस्या -** तपस्या को क्रियायोग के उपादान के लिए कथन किया गया है, क्योंकि रजोगुण व तमोगुण का उद्रेक तपस्या के बिना शिथिल नहीं होता है। अतः तपस्या करने से चित्तमलों व अशुद्धि (रजो व तमोगुण) का नाश होने के साथ-साथ अणिमा, महिमा आदि शरीर व इन्द्रियों सम्बन्धी सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

**स्वाध्याय -** कैवल्यपरक पवित्र मन्त्र ओंकार आदि का जाप व अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। इससे उन मन्त्रों के ऋषि या देवता अभीष्ट कार्यों को पूरा करते हैं तथा उनका दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त चित्त में स्थिरता आती है।

**ईश्वर प्रणिधान -** समस्त कार्यों को ईश्वर के प्रति समर्पित करना तथा उन क्रियाओं के फलों में अनासक्ति ही ईश्वरप्रणिधान है। इससे समाधि की शीघ्र प्राप्ति होती है तथा योगी का चित्त यथार्थता से शीघ्रता के साथ साक्षात्कार करने योग्य हो जाता है। शीघ्र समाधि प्राप्ति हेतु योग में ईश्वरप्रणिधान को ही एक मात्र

<sup>38</sup> प्रच्छेदनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ यो.सू. 1.34

<sup>39</sup> विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी ॥ यो.सू. 1.35

<sup>40</sup> विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ यो.सू. 1.36

<sup>41</sup> वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ यो.सू. 1.37

<sup>42</sup> स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ यो.सू. 1.38

<sup>43</sup> यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ यो.सू. 1.39

उपाय बतलाया गया है। इसमें योगी के प्रणिधान या भक्ति विशेष से प्रसन्न हुए ईश्वर के संकल्प मात्र से ही शीघ्रतम समाधि फल योगी को प्राप्त हो जाता है। अतः योगदर्शन ज्ञान मार्ग के साथ-साथ भक्तिमार्ग को भी समाहित किये हुए है।

इस प्रकार क्रियायोग का मार्ग मध्यम व चंचलचित्त मनुष्यों को समाधि तक पहुँचाने वाला भक्तिमार्ग प्रेरक के समान मार्ग है जो सामान्य गृहस्थजनों के लिए अति उत्तम मार्ग है तथा समस्त दुःखों व विघ्नों की निवृत्ति का मार्ग है।

### सन्दर्भ

1. योगदर्शनम् उदयवीर शास्त्री, विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन, दिल्ली, २०००
2. तर्कभाषा केशवमिश्र, गजानन्दशास्त्री मुसलगाँवकरकृत हिन्दी व्याख्या सहित, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रण, १९९५
3. तर्कसंग्रह अन्नम्भट्ट, दयानन्दभार्गवकृत हिन्दी व्याख्या सहित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
4. सांख्यदर्शनम् रामनाथ झा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, २००८